Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 3 | ISSN : 2581- 6306

बाणभट्ट के विशिष्ट वनस्पतियों का विवेचन

डॉ० दीनानाथ मिश्र
ग्राम + पो०-अतिहर, भाया – सारामोहनपुर
जिला – दरभंगा, बिहार, भारत।

शोधसार – संस्कृत साहित्य में प्रकृति की सुन्दरता का प्रचुर वर्णन प्राप्त होता है। कवि बाणभट्ट के काव्यों में अनेकविध वनस्पतियों का सूक्ष्म वर्णन प्राप्त होता है। वन, आश्रम, गृह और राजप्रासाद को सुसज्जित करने की परम्परा रही है। कवियों ने अपने काव्यों वनस्पतियों की सुन्दरता का काव्यात्मक और रम्य वर्णन किया है।

प्रमुख शब्द - बाणभट्ट, वृक्ष, पुष्प, अशोक, शाल्मली, पर्वत, वन, राजप्रासाद, कादम्बरी, केवड़ा, इत्यादि।

गद्यकार बाणभट्ट ने अनेक वनस्पतियों की चर्चा अपने कादम्बरी आदि ग्रन्थों में किया है। जिसमें अशोक का स्थान देव वृक्ष होने के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। वनस्पति मानव जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी है, इसलिए कहा गया है – **वृक्षो रक्षति रक्षितः।**

अशोक–यह प्राय: सभी प्रान्तों में पाया जाता है, विशेषकर सड़कों के किनारे देखने में आता है। इसे वाटिकाओं में भी लगाते हैं।

इसका वृक्ष सीधा खड़ा होता है। शाखाएँ- सघन नहीं होती। पतली-पतली टहनियों पर पत्ते विषमवर्ती रहते हैं। छाल-पतली और लकड़ी-किंचित् पीलापन युक्त सफेद होती है। असली अशोक की तरह इसमें उभार नहीं रहते एवं इसमें बाह्य त्वक् आसानी से छुड़ाई जा सकती है। अन्दर से यह हल्के रंग की होती है। पत्ते-15-22 से.मी. तक लम्बे, किंचित् अंडाकार, भालाकार, लहरदार धारवाले और चमकीले होते हैं। फूल-हरापन युक्त पीले रंग के अथवा नीले रंग के और पकने पर लाल हो जाते है।

गुण और प्रयोग – गलती से इसकी छाल का कहीं-कहीं असली अशोक के स्थान पर प्रयोग किया जाता है। यह ज्वरनाशक होती है।

शाल्मली –कादम्बरी में वर्णित पम्पा सरोवर के पश्चिमी किनारे पर पुराना बड़ा सेमल का पेड़ था। समीप में ही उसका साथी वह जीर्ण ताड़-वृक्ष था जिसे त्रेतायुग में राम अपने वाणों से जर्जर कर गए थे। उसकी जड़ में सदा एक बड़ा अजगर लिपटा रहता था, जैसे किसी ने वृक्ष के लिए आँवला बना दिया हो। ऊँचे गुहों से भटकते हुए केचुल वायु में हिलते हुए ऐसे लगते थे मानो उस महावृक्ष ने झीने उत्तरीया में पड़े हो। दिशाओं का प्रसार कहाँ तक है, इसे जानने के लिए मानो उसने आकाश में अपनी सारी शाखा-प्रशाखाएँ फैलाई थी। उन्हें देखकर आया था मानो वह प्रलयकाल में काण्डव के लिए सहस्रों भुजाएँ फैलाए हुए चारों ओर संकरे की होड़ कर रहा

था। बहुत पुराना होने के कारण कहीं वह गिर न जाय अपने अट्ठाईस वृक्ष ने अपना कंधा काश के सहारे टेक दिया था। उसे चारों ओर से कस लिया था, मानो वे उसके जीर्ण शरीर की नस-नाड़ियाँ हो। उसके काँटों की शोभा ऐसी थी, मानो बुढ़े शरीर पर मस्से पड़ गये हों। समुद्र का जल पीकर जो मेघ उसके पास आते थे ऊँचे शिखर को न छू पाकर पक्षियों की तरह उसकी शाखाओं के बीच में ही छिप जाते थे और भरे हुए बोझे से अलसाकर क्षणभर के लिए जो ठहरते तो उतनी ही देर में उसके पल्लवों को बूंदों से गीला कर जाते थे। वह इतना ऊँचा था मानो स्वर्ग के नन्द-नवन की सौन्दर्य लक्ष्मी को देखने के लिए उचका हुआ हो। उसके शिखर पर भूवों की फैली हुई रूई से श्वेत शाखाओं को देखकर संदेह होता था कि कहीं आकाश में चलने से सूर्य के घोड़े थककर वहाँ कुछ देर के लिए ठहर गए हों और उनके ओठों के छोर से मुँह का फेनाप वहाँ टपक गया हो। जड़ों के पास उसके तने में गण्डस्थल रगड़ कर जहाँ जगंली हाथियों ने अपनी खाज मिटाई थी वहीं मद की सुगंधि से खिंचकर भौंरे चिपट रहे थे, मानों किसी ने लोहे के दृढ सिक्कड़ों से उसके मूल भाग को कल्पांत तक के लिए अडिग बना दिया हो। कोटरों में भरे हुए भनभनाते भौंरों को देखकर लगता था मानों उसकी देह में प्राण हों। अनेक पक्षियों ने वहाँ अपने पंख गिराए थे। वनराजियों ने उसे सब ओर से ढक रखा था। यों आकाश में ऊँचा सिर उठाए हुए वह वृक्षराज ऐसा जान पड़ता था मानों वनदेवताओं ने भुवनों का दर्शन करने के लिए एक अवलोकन-प्रासाद बनाया हो, या वह दण्डक-वन का राजा हो, या सब वनस्पतियों का नायक हो, या विंध्याचल का सखा हो, जिसने अपनी शाखारूपी भुजाओं से विंध्याचली का आलिंगन कर रखा था।[1]

भुवनावलोकन प्रासाद तत्कालीन स्थापत्य का पारिभाषिक शब्द था। प्रासाद की चोटी पर सबसे ऊँचे कक्ष के लिए यह संज्ञा थी, जहाँ बैठकर राजा या गृहपति चन्द्रिका का आनन्द लेते थे और यथावसर, प्रकृतिदर्शन करते थे। कन्हेरी के गुफामंडपों में सबसे चोटी की गुफा को, जहाँ से अब भी समुद्र का दृश्य दिखाई पड़ता है, सागरप्रलोभन-गुफा कहा गया है। यद्यपि बाण चित्रात्मक वर्णनों के धनी हैं और उनकी कल्पनाओं की कोई थाह नहीं है, फिर भी शाल्मली वृक्ष का वर्णन अपने ढंग का एक है। इसमें सूक्ष्म दृष्टि से उन्होंने वृक्ष के बाहरी रूप और चारों ओर के वातावरण का निरीक्षण किया है और काव्यमयी नई-नई कल्पनाओं के ताने-बाने से उसे सजाया है। जलधर मेघों का वृक्षों के पास आना और अपनी बूंदों का कुछ अंश हल्का करके वहाँ से हटना इस तथ्यात्मक घटना की कवि ने जैसी काव्यमयी कल्पना में रखा है वह अतीव हृदयग्राही है।

उसकी शाखाओं पर, कोटरों में पल्लवों के पंत में, गुदों के जोड़ों में, पुरानी छाल के छेदों में, नाना देशों से आए हुए सैकड़ों वर्षों के कुटुम्ब घोसला बनाकर रहते थे। वृक्ष पर चढ़ना कुछ कठिन था, इसलिए वे सर्पो से निश्चिन्त थे। यद्यपि उसे पचे कुछ विरल हो गए थे, तो भी उस पर बैठने वाले सुग्गों से वह छतनार था। वे उस पर रात बिताकर प्रात:काल चुग्गा लेने के लिए पक्ति बनाकर प्रतिदिन इधर-उधर आकाश में उड़ जाते थे। उस समय ऐसा ज्ञात होता है कि बलराम के हल से खींची हुई जमुना की धाराएँ बिखर गई हो तथा स्वर्ग के ऐरावत ने आकाशगंगा की कमलिनियों को उखाड़कर फेंक दिया हों, या सूर्य के हरे रंग के घोड़ों की प्रभा से आकाश रंग गया हो, या पन्ने की भूमि का खंड उड़ रहा हो, या आकाश रूपी सरोवर में सिरवाल घास फैली हुई हों।[2] कदलीदल के समान खुले हुए अपने पंखों से वे सूर्य-ताप से खिन्न दिशाओं के मुख पर पंखा झलते हुए से लगते थे, या मानों आकाश में हरी घास की बढ़ती हुई हठी सी बिछाते जाते थे। उनकी रंग-बिरंगी पंक्तियों से विदित होता था कि आकाश में इन्द्रधनुष फैला हुआ थां अपना पेट भरकर जब वे लौटते तो घोसलों में बैठे हुए अपने बच्चों के लिए भी भाँति-भाँति के रसीले फल और चावलों की वालियाँ अपनी लाल चोंच में दबाकर लाते और असाधारण प्रेम से बच्चों के मुँह में चुग्गा देकर बाल-बच्चों के साथ रात बिताते थे।

उसी वृक्ष के एक पुराने कोटर में पत्नी के साथ रहते हुए मेरे पति की आयु के अंतिम भाग में भाग्यवश मेरा जन्म हुआ। मेरे जन्म के समय की कठिन प्रसव-वेदना से माता स्वर्ग सिधार गई। प्रिय पत्नी के विरह-शोक में दु:खी हुए पिता पुत्र-स्नेह से किसी तरह अपने को धैर्य देकर मेरा, लालन-पालन करने लगे। बुढ़ापे के कारण पिता के पंखों में उड़ने की शक्ति न रह गई थी। ज्ञात होता था उन्होंने हरा कुश चीर पहन लिया था। उनका शरीर काँपता था, मानों देह में चिपटी हुई दु:खदाई बुढ़ौती की वे झाड़ कर छुड़ा देना चाहते थे। इस जीर्ण दशा में भी वे सुकुमार हरसिंगार के फूल की डंडी के समान लाल चोंच से, जिसकी अगली कोर टूट चुकी थी और

चावल के दाने तोड़ते हुए जिसके पार्श्वभाग में पतला रेखा-चिह्न पड़ गया था, औरों के घोंसलों से पेड़ के नीचे गिरे हुए चावल के कण या सुग्गों द्वारा कुतर कर फेंके हुए फलों के टुकड़े लाकर मुझे देते और मुझे खिलाकर ही बचा हुआ आप खाते थे।[3]

एक दिन जब प्रभातकाल की ललाई से आकाश फूला हुआ था, तब उस वन में मृगया के कोलाहल की ध्वनि सुनाई पड़ी। आकाश में एक ओर चन्द्रमा बूढ़े हंस की भाँति आकाश-गंगा का तट छोड़कर पश्चिमी समुद्र के किनारे उत्तर रहा था। दिशाओं के छोर तक फैला हुआ हल्का पीला क्षितिज क्रमशः अधिक विस्तृत होता जा रहा है। चन्द्रमा की किरणें हाथों के रूधिर से रञ्जित सिंह के बालों के समान पहले कुछ अधिक लाल थी। फिर उसका रंग लाख के तन्तुओं के समान हो गया। धीरे-धीरे आकाश के तारे ओझल हो गए। तो किसी ने पद्मराग की शलाकाओं से बनी हुई बुहारी से गगन-तल के फर्श चारों ओर फूलों को समेट दिया हो। सप्तर्षि मंडल उत्तर की दिशा में दिखाई पड़ रहा अपने सन्ध्योपासन के लिए वह मानसरोवर के तीर पर चला गया था। पश्चिमी समुद्र तल में धवलित हो गया था। उसपर जो सीपियों के खुले हुए संपुटों से मोती बिखर गए थे वे ऐसे लगते थे मानों सूर्य की किरणों ने समेट कर आकाश के नक्षत्रों को नीचे गिरा दिया हो।

वन में ओस की बूंदे वृक्षों से धरती पर पड़ने लगी। पक्षी जाग गए। माँद में सोए हुए सिंह अंगड़ाई लेने लगे। हथनियाँ मदमत्त यूथपति को जगाने लगी। वृक्षों पर रात में जो फूल-फूले थे उन्हें प्रातःकाल अरण्य स्वयं अपनी पंख रुपी अञ्जलि में भरकर उदय गिरि के शिखर पर उगते हुए भगवान सूर्य को अर्पित करने लगा। तपोवनों में मुनियों ने वृक्षों के नीचे जो अग्निहोत्र आरंभ किए उनकी धूम-लेखाएँ वृक्षों के शिखर को छूने लगीं, मानो धर्म की पताकाएँ फहराने लगी हों, या वन देवताओं के महलों के शिखर पर धूसर रंग की पारावत पंक्तियाँ बैठ गई हो।[4]

प्राचीन राजप्रासादों में हिमगृह का निर्माण प्रासाद-वास्तु-विन्यास का आवश्यक अंग था। अंगविज्जा नामक प्राचीन ग्रंथ में भी प्रासादवर्णन के अन्तर्गत हिमगृह का उल्लेख आया है।[5] मध्यकालीन राजप्रासादों में भी उसका निर्माण किया जाता था और अब तक सावन भादों के रूप में अवशेष देशी रजवाड़ो के प्राचीन महलों में पाए जाते हैं।

परिजनों ने उसे प्रणाम किया और जल्दी से एक ओर हटते हुए मार्ग दिया। तब कदली-तोरणों के बीच से जाते हुए उसने हिमगृह में प्रवेश किया। तोरणों के दोनों ओर की वेदिकाएँ चन्दन पंक से पुती हुई थी। कमल-कलिकाओं की क्षुद्र-कलिकाओं की क्षुद्र-घंटिकाएँ तोरणों पर टाँगी गई थीं। खिले हुए सिंधुवार की मंजरियों लटकाई गई थी। मल्लिका की कलियों के हार गूँथकर उनके जाल तोरणों पर सजाए गए थे। लवंग के पल्लवों की वंदनवारें[6] बाँधी गई थी। कुमुद पुष्पों की मालाएँ तोरणों की ध्वजाओं पर दोलायमान थी। उन तोरणों के दोनों ओर मृणाल की वेत्रलता हाथ में लिए हुए और पुष्पों के आभूषण लिए द्वारपालिकाएँ खड़ी थी, ज्ञात होता था वसंत लक्ष्मी की प्रतिमूर्तियाँ हो। चन्द्रापीड ने तोरणों के नीचे से भीतर प्रवेश करके चारों ओर दृष्टि फेर कर देखा। कहीं छोटी गृह नदिकाएँ बह रही थीं जिनके दोनों किनारों पर तमाल पल्लवों की वन राजियां बनाई गई थी। उनके किनारों पर कुमुद पुष्पों की धूलि बालू के रूप में बिछाई गई थी और बीच में चन्दन जल की धाराएँ बह रही थी। कहीं जल से भीगे हुए चंदोवों के नीचे लाल कमल बिछाकर शयन रचे गए थे जिनके चारों ओर सिंदूर की रेखा से सीमा बाँध दी गई थी। कहीं स्फटिक के भवनों में, जिनकी स्वच्छ भित्तियाँ छूने से ही जानी जाती थी, इलायची का रस छिड़का गया था।[7] **आबद्धलबंगपल्लवचन्दनमालिकानां**- भानुचन्द्र और वैध दोनों के संस्करण में चन्द्रनमालिका पाठ है। भानुचन्द ने एक कोश का उदाहरण देते हुए लिखा है- "तोरणाये तु मल्यं दामचन्दनमालिका इतिकोषः'' श्री काणे ने मूल में वंदनमालिका का कार्य किया है- **मंगलखकतोरणोध्वं भवेद् वंदनमालिका।** कादम्बरी अनुच्छेद 64 में भी चन्दनमालिका रूप आया है- **"वंदनमालान्तराल घटित घंटा गणेन द्वारदेशेन।''** लोक में भी वंदनबार यही रूप चलता है। कहीं मृणालयुक्त धारागृहों में शिखर पर बने हुए यंत्रमयूरों के मुख से जलधाराएँ उछलकर बह रही थीं और धारागृह के अधोभाग की शिरीष के पुष्पों की हरित केसरों से आच्छादित किया गया था। कहीं छोटे कुटज या पर्णशालाएँ थीं जिनकी छतों और भित्तियों पर जम्बू पल्लवों का आच्छादन करके सहकार का रस छिड़का गया था। कहीं बापी में सुनहली कमलिनियाँ खिली हुई थीं जिनमें बने हुए कृत्रिम

हाथी के बच्चे अपनी क्रीड़ा द्वारा उनके फूलों को बिखेड़ रहे थे।[8] **शिरीषपक्ष्मकृतशाद्वलानां मृणालधारागृहाणां शिखरमारीप्यमाणानां धाराकदंब-धूलिधूतरणां यंत्रमयूरकाणां कदम्बकानि**–धारागृह का यह चित्र इस प्रकार समझना चाहिए–बीच के खम्भे के सिर पर यंत्रमयूर अर्थात् पत्थर या धातु के मोरों का मण्डल बना हुआ था जिनकी देह का पुछार भाग नीचे कर और लम्बी गर्दन ऊपर की ओर कुछ आगे निकली हुई थी। इस प्रकार उनके मुख से चारों ओर लम्बी गर्दने ऊपर की ओर निकली हुई थी। इस प्रकार उनके मुख से चारों ओर पानी की धाराएँ छूट रही थी। फव्वारे की जड़ में कुछ ऊँचाई तक जहाँ हरी घास या पत्तियाँ बिछाई जाती है वहीं शिरीष पुष्प के तंतु बिछाकर शाद्वल बनाया गया था। जिस भाग में धाराएँ उछल कर गिरती थी उस पानी भरे हुए स्थान में कमल लगे थे जिस कारण उसकी संज्ञा मृणाल–धारागृह हुई थी। धारागृह में चारों ओर धाराकदम्ब वृक्ष लगे हुए थे जिनकी ऊँची शाखाओं पर खिले हुए पुष्पों को धूलि बीच के मोरों के ऊपर गिर रही थी। कहीं सुगन्धित जल से भरे हुए कुओं से घटीयंत्रों द्वारा जल उलीच कर छोटी जलद्रोणिकाओं में भरा जा रहा था। इन कुओं पर सुनहली गचकारी से कामपीठ रचे गए। पत्तों के दोने ही घटीयंत्र की भाँति काम में लाए गए थे।[9] **क्रीडितकृत्रिमकरिकलभयूथकाकुलक्रियमाणाः कांचन कमलिनिकाः**– यहाँ बाण ने वापी का उल्लेख नहीं किया, किन्तु मेघदूत में हेम कमलों से भरी हुई वापी का वर्णन आया है। कांचन कमलिनियां सोने से उत्कीर्ण कमलिनियां थी जिनमें वैदूर्य के नाल लगे रहते थे। उसी प्रकार की कमलिनियाँ यहाँ अभिप्रेत ज्ञात होती है। अलका की बापी कालिदास ने हंसों के निवास का उल्लेख किया है, संभवतः वे भी कृत्रिम हंस थे। यहाँ मृणाल से क्रीड़ा करने वाले कृत्रिम गजशावक बनाए गए थे जो पानी के प्रवाह से कमलपुष्पों पर झपट कर उन्हें झकझोरते थे। घटीयंत्रों को फिरानेवाली माला सनाल नीलोत्पलों को गूँथकर बनाई गई थी। वह चक्का जिसके आधार से यह सुकुमार रहट घूमती थीं कमल ककड़ियों को जोड़कर बनाया गया था। इस प्रकार के सुकुमार घंटीयंत्र से जो सुगन्धित जल कुएँ से बाहर गिर रहा था वह कुँए से सटाकर बनाई हुई उस छोटी द्रोणी में एकत्र हो रहा था जो मरकत मणियों में केवड़े के पत्तों की आकृति उकेर कर बनाई गई थी। कामपीट का तात्पर्य उस जगती पीठ से ज्ञात होता है जो कूप के चारों ओर बनाया जाता है। यह शब्द नया है और पहली बार कादम्बरी में मिला है। काणे ने काम का अर्थ रम्य किया है। जटानन्दिकृत वल्लालरित में जो सातवीं शती का ही ग्रंथ हैं कामलता अलंकरण का उल्लेख आया है[10], जिसका अभिप्राय उस प्रकार की लता या बेल से था जिसमें कामासक मिथुन मूर्तियाँ बनाई जाती थी। वहाँ इस प्रकार का अलंकरण द्वार बनाने का वर्णन है। गुप्तकालीन मंदिरों के द्वार के अलंकरणों में इस प्रकार की बेलें मिलती है। इसी अलंकरण से सजाई हुई कुएँ की जगती पीठ के लिए यहाँ कामपीठ शब्द प्रयुक्त हुआ ज्ञात होता है।

हिमगृह की एक बड़ी विशेषता बहते हुए जल के उतरने से बनी हुई जलचादर थी। जिसे मध्यकाल में जलचादर कहते थे वही गुप्तकाल के हिमगृहों में मेघमाला कहलाती थी। इसे संचार्यमाणा कहा गया है, अर्थात् बहते हुए पानी को ढालपर संचारित करने या उतारनेसे यह जलचादर बनाई जाती थी। इसमें भी कई विशेषताएँ ध्यान देने योग्य हैं। एक तो यह जलचादर स्फटिक की बनी हुई थी। दूसरे स्फटिक की चादर के बाहर की ओर अनेक बलाकाएँ या बगुलियाँ उत्कीर्ण की गई थी। बलाकाओं के मुखों से जल की महीन धाराएँ फुहार की तरह झर रही थीं। स्फटिक की चादर के पीछे की ओर रंग–बिरंगे इन्द्रधनुषों की आकृत्तियाँ चित्रकारी में बनाई गई थीं। स्फटिक के भीतर होने के कारण इनके रंग पानी से बिगड़ते न थे, पर उनकी झलक पानी की फुहारों में अत्यन्त सुहावनी लगती थी। तीसरी विशेषता यह थी कि स्फटिक शिला में ही माया मेघमाला नाम का सुन्दर अलंकरण बनाया गया था। **कृतककेतकदलजलद्रोणिकानि-जलद्रोणिका** वह छोटी हौज थी जिसमें स्नान के लिए सुगंधित जल भरा जाता था, जैसा शूद्रक की स्नानभूमि के वर्णन में आया है– **गन्धोदकपूर्णकनकमयजलद्रोणीसनाय मध्यम्।** यह जलद्रोणी किस प्रकार से बनी थी इसका भी यहाँ उल्लेख है–**'कृतककेतकदलजलद्रोणिका,** अर्थात् केवडे के कृत्रिम पत्तो से। केवड़े के कृत्रिम पत्र हरी मरकतमणि में ही उकेरे जाने की संभावना है। लम्बे पत्ते एक दूसरे से जुड़े हुए खड़े दाँव लगाए जाते थे।[11]

इस प्रकार बाणभट्ट के विशिष्ट वनस्पतियों अशोक, शाल्मली, तमाल, कमल एवं कुमुद का संस्कृत साहित्य में वर्णित तथ्यों के आधार पर विवेचन प्रस्तुत किया गया है जो समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

सन्दर्भ सूची

[1]. कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पुष्ठ–36–37

[2]. कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पुष्ठ–38

[3]. कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पुष्ठ–38

[4]. कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पुष्ठ–39

[5]. कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पुष्ठ–212

[6]. कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पुष्ठ–213

[7]. कादम्बरी अनुच्छेद 1–64, पृष्ठ–1251

[8]. तत्रैव, पृष्ठ–185

[9]. मेघदूत–2/13

[10]. वरा चरित–22/60

[11]. कादम्बरी, पृष्ठ–211